अपनी-अपनी राह

करीम का मज़बूत कलाई वाला हाथ लोहे के चमकीले और तेज़ सत्तुर के साथ उठा और कुन्दे पर रखी रान पर गिरा। एक खटाक की आवाज़ के साथ रान को चीरता सत्तुर कुन्दे पर गड़ गया, मांस के दो-चार बारीक रेशे उड़े और करीम के सामने लगी भीड़ के पास वाले आदमी की सफ़ेद क़मीज़ पर दो-तीन कत्थई-लाल रंग के धब्बे बैठ गये। दो हो गयी रान में से एक की बोटियाँ बनाते हुए करीम ने निमिष-भर के लिए भीड़ पर निगाह डाली और प्रतिदिन की तरह मुस्कराकर ऊँची आवाज़ से बोला, "क्यों रमज़ान भाई, एक तराज़ू और दूँ क्या ?"

रमज़ान सामने बैठता था। उसके पास की भीड़ कम हो गयी थी। उसके बड़े, मोटे और पुराने कुन्दे पर, जिसका ऊपरी हिस्सा रोज़-रोज़ की मार से चूरा हो रहा था, एक सिर और कुछ पाये रखे थे और एक पाये की खाल वह छील रहा था। करीम का वह वाक्य प्रतिदिन की तरह ही फूटा था। उसमें कोई खास बात नहीं थी। दरअसल करीम जब काम से क्षण-भर के लिए भी अवकाश पाता, अपनी दुकान की ओर

दूसरी दुकानों की भीड़ देखता तो खुशी से छलककर बात करने का कोई सिलसिला पकड़ने या योंही बात करने के लिए यह वाक्य दोहरा देता, यद्यपि ऐसा अवसर एक बार भी नहीं आया कि रमज़ान ने उससे दो तराज़ू की माँग की हो। जवाब में रमज़ान कुछ नहीं बोला।

पिछली दोनों रानों की बोटियाँ बन गयीं तो करीम ने ग्राहकों की ओर ध्यान दिया। भीड़ शायद बड़ी देर से मांस की प्रतीक्षा में थी। समय आ गया देख भीड़ में से प्रत्येक की थैलियाँ खुल गयीं, आगे बढ़ आयीं और सबों ने प्रयत्न किया कि किसी तरह करीम का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सकें। पर करीम के पास से गोश्त खरीदने में सब्र की आवश्यकता पड़ती है (जैसा कि करीम स्वयं कहता है।) अतः बड़ी देर से खड़े, थैलियाँ बार-बार आगे बढ़ाते हुए बच्चों को बातों में उलझाकर करीम ने तराज़ू उठाया, पल्ले में मांस के अच्छे, कत्थई टुकड़े भरे, चर्बी की दूधिया लच्छी उलझायी, तौला और मांस वाले पल्ले को ज़्यादा-से-ज़्यादा भारी बता, एक ओर खड़े चपरासी की थैली में फुर्ती से डालकर प्रतिदिन की तरह कहा, "सर्किल साहब से हमारा आदाब कहियो, भैया!"

भीड़ जब ज़रा कम हो गयी और करीम के आगे इक्के-दुक्के लोग ही रह गये तो करीम ने उड़ती निगाह रमज़ान की दुकान की ओर डाली। दुकान साफ़ थी, तराज़ू और बाट एक ओर उपेक्षित पड़े थे और रमज़ान बड़े ध्यान से पैसों का हिसाब कर रहा था।

रमज़ान करीम के पास आया और मुस्कराकर बोला, "क्या हाल है?"

करीम ने फीके ढंग से हँसकर कहा, "आज एक-डेढ़ से अधिक नहीं बच पायगा।"

रमज़ान थोड़ी देर आश्चर्य से करीम की ओर देखता रहा, फिर

बोला, "बस ? मैं अपने साथ आज आठ रुपये बचाकर ले जा रहा हूँ, और इतना गोश्त। ईमानदारी लेकर तुम जी सकते हो, करीम, मैं एक-डेढ़ कमाऊँ तो बाल-बच्चों को क्या खिलाऊँगा ?"

रमज़ान के जाने के बाद करीम ने अपने पैसों का हिसाब लगाया। उसका अन्दाज़ ग़लत था। आज उसके पास शायद एक से भी कम बचेगा। सिर, पाये और खाल से शायद तीन-चार और मिल जायँ, पर इतने से क्या होगा ? रमज़ान प्रतिदिन कम-से-कम पाँच-सात तो बचा ही लेता है, सिर, पाये, खाल अलग और तौल में मारा हुआ गोश्त कभी-कभी चार सेर तक पहुँच जाता।

करीम का व्यापार करने का ढंग दूसरे क़साइयों से अलग था। जानवर ख़रीदने में वह जानवर की क़ीमत से ज़्यादा उसकी तन्दुरुस्ती का ख़याल करता था। तन्दुरुस्त और अच्छे जानवर ख़रीदने में यदि करीम को दो-चार अधिक भी देने पड़ते तो भी वह उस पर कभी नहीं सोचता। रमज़ान की बात दूसरी थी। मरियल-से-मरियल और बीमार-से-बीमार जानवरों को पास करवा लेना उसके लिए मामूली बात थी। जिन दिनों डाक्टर शहर से बाहर दौरे पर होता, रमज़ान के इकट्ठे किये जानवर, मरियल, बीमार, सभी निकल जाते। डाक्टर भले रमज़ान का ख़याल न करे, पर मुंशी सीधा और समझदार आदमी था। सुबह-सबेरे उसकी हथेली में रुपये आ जाते तो उसे क्या पड़ी थी कि किसी की रोज़ी-रोटी के आगे आये, आख़िर उसके भी तो बाल-बच्चे थे। उसकी राय के मुताबिक़ करीम एक निहायत ही बेवक़ूफ़ आदमी था। भला रोज़गार ऐसे होता है ? उम्र के बरस ज़िन्दगी में जोड़ लेना और बात है और दुनिया देखना और। उसने रमज़ान के द्वारा कहलवा दिया कि मियाँ, ईमानदारी और रोज़गार दो अलग-अलग चीज़ें हैं, साथ-साथ नहीं चल सकतीं।

करीम थोड़ी देर हँसता रहा, फिर सहसा गम्भीरतापूर्वक उसने पूछा, "मुझे एक बात बताओगे, रमज़ान ?

"क्या ?"

"हर दिन तौल में कितना गोश्त मार देते हो ?"

पल-भर के लिए रमज़ान चुप हो गया, फिर हौले से मुस्कराकर, जैसे कोई राज़ की बात कह रहा हो, बोला, "एक सेर से तीन सेर तक। क्यों ?"

करीम बोला, "कुछ नहीं। बहुत दिनों बाद आज माँ की एक बात याद आ गयी। कहती थी कि जो दुनिया में गोश्त की चोरी करता है, क़यामत के दिन खुदा उसके ज़िस्म से उतना ही गोश्त चिमटे से नोच लेता है।"

रमज़ान ठहाका मारकर हँसने लगा, फिर हँसता हुआ बोला, "तुम तो बच्चों की तरह बातें करते हो।

*

नौ-दस की उम्र में, जबकि लड़कों को खेल से ही अवकाश नहीं मिल पाता, करीम ने ग़ालिब की कई ग़ज़लें याद कर डाली थीं। लड़कों और मास्टरों का ख़याल था कि आगे करीम ज़रूर एक शायर होगा किसी ज्योतिषी ने भविष्यद्वाणी की थी कि करीम ऊँची शिक्षा पाने विदेश जायगा।....ऐसी बातें सुनकर उस समय क्या करीम ने कभी सोचा था कि वह बाज़ार में बैठकर एक दिन गोश्त काटेगा ?

माँ का साया बचपन में ही उठ गया था। जब तक बाप ज़िन्दा रहे, करीम की पढ़ाई किसी तरह रोते-गाते चलती रही, पर उनके बाद जब केवल भाई-भाभी का सहारा रह गया तो करीम से आगे नहीं चला गया। तेरह की ही उम्र में करीम घर छोड़कर आज़ाद हो गया। अपनी

ज़िन्दगी का प्रारम्भ उसने किसी दूर के शहर में होटल की प्लेटें साफ़ करने से किया और उन्नति करता-करता बस की कण्डक्टरी तक पहुँच गया, पर मोटर वालों की ज़िन्दगी हमेशा बे-ठिकाने की होती है, अतः एक दिन करीम ने वह नौकरी भी छोड़ दी।

जब वह यहाँ आया तो उसकी हालत अच्छी न थी। बस-सर्विस के ज़माने में वह कई बार यहाँ आ-जा चुका था और खूब मेल-मुलाक़ात बढ़ा ली थी। इसलिए जब यहीं के किसी पहचान वाले ने चले आने के लिए ज़ोर दिया तो उसने दूसरे दिन ही उसे अपने आने की सूचना भेज दी। पिछले कई वर्षों से कभी एक जगह टिककर वह नहीं रह पाया था। नौकरी करते-करते वह इतना ऊब चुका था कि कुछ दिन एक जगह टिककर वह आराम करना चाहता था। अभी वह यहाँ आया ही था कि रमजान से उसकी मुलाक़ात हुई। उसे एक आदमी की ज़रूरत थी, पर क़साईखाने में काम करने से उसने इन्कार कर दिया। करीम भले ग़रीब परिवार का हो, पढ़ा-लिखा न हो, भले होटल में प्लेटें साफ़ की हों, पर उसके खानदान में कोई खोट नहीं था। उसके बाप ने जीवन-भर सरकारी नौकरी की थी। कभी-कभी वह अच्छी ग़ज़ल कह लेते थे। जीवन में कभी एक भी नज़्म अखबार में नहीं आयी, पर शहर के किसी भी मुशायरे में उनका नाम सबसे पहले लिया जाता था। बड़ों-बड़ों तक उनकी पहुँच थी, अतः करीम का बड़ा भाई उनके जीवन-काल में ही किसी दफ़्तर का बाबू बन गया था। करीम अपने नाम के साथ क़साई सुनने को बिलकुल तैयार नहीं था। क़साई कहने के साथ ही एक कितनी निर्मम, निर्दयी और खूँखार आकृति नज़रों के सामने आ जाती है। करीम तो एक शायर का बेटा था!

एक महीना और बीता और करीम किसी हीले से नहीं लग पाया तो उन दुकान वालों ने उधार सामान देना बन्द कर दिया, कुछ कड़वी

बातें भी कह दीं। अपने बाप के चन्द बाज़ारी किस्म के शेर, जिन्हें सुना-सुनाकर करीम उन लोगों को उलझाये रखता था, अब बे-असर हो गये। विवश हो उसने एक दिन रमज़ान के साथ काम करना स्वीकार कर लिया, लेकिन उसने साफ़ कह दिया कि वह रमज़ान के साथ दुकान पर नहीं बैठ सकता। पहले करीम का काम हर बाज़ार के दिन जानवर ख़रीदने में रमज़ान की मदद करना, मुँह-अँधेरे उठकर ढोर-अस्पताल से जानवर पास कराना, ज़िबह करना, छीलना और उजाला फूटने के पहले दुकान में पहुँचा आना भर था। मुश्किल से यह सिलसिला दो माह तक चला। उसके बाद न चाहते हुए भी, दुकान में अधिक भीड़ होने, रमज़ान की तबीयत एकाएक ख़राब हो जाने या कभी किसी आवश्यक कार्यवश अनुपस्थित रहने पर, उसे दुकान पर बैठना पड़ता।

धीरे-धीरे उसे विश्वास होने लगा कि धन्धा भले दूर से ख़राब दिखे, वैसे बुरा नहीं। रमज़ान की बीवी के कान सोने की मोटी-मोटी बालियों से झुके पड़ते थे। रमज़ान की इज़्ज़त करीम से कई गुनी ज़्यादा थी। रमज़ान कहता था कि पेट के लिए किया कोई भी धन्धा बुरा नहीं। दुनिया का हर आदमी पैसों के पीछे भागता है, सिर्फ़ अपनी-अपनी राह अलग होती है।

जिस दिन करीम की समझ में यह बात आ गयी, उसके दूसरे दिन ही उसने अपना हिसाब करवा लिया। कुछ दिनों म्युनिसिपेलिटी के सेनिटरी इन्सपेक्टर के पीछे भागता फिरा और लाइसेन्स किसी तरह निकलवाकर रमज़ान के सामने ही अपनी दुकान खोल डाली। पहले-पहल ग्राहक कम थे, पर धीरे-धीरे अधिकांश लोग उसकी ओर ही खिंच आये क्योंकि करीम न सिर्फ़ अच्छा मांस बेचता था, बल्कि तोल में भी एक बोटी इधर-उधर न करता था। जब तक करीम रमज़ान के

साथ काम करता था, उसका रहना-सहना उसी के घर में था, पर अलग होने के बाद मकान की बात आयी। रमज़ान ने ही उसका इन्तज़ाम कर दिया। उसके एक दूर रिश्ते की बहन ज़हीरा के मकान में उसे दो कमरे मिल गये। ज़हीरा बेवा थी और उसकी एक बच्ची थी। ज़हीरा के पास जितनी ज़मीन थी, उसके गुज़ारे के लिए काफ़ी थी। मकान का एक हिस्सा उसने कुछ तो यह सोचकर भी करीम को दे दिया कि वह बच्ची के साथ अकेली रहती थी, एक आदमी का सहारा रहेगा।

*

तहमद अलग कर करीम ने रस्सी में टाँग दी, क़मीज़ एक ओर डाली और जैसे टूटकर खाट में पड़ गया। खाट के कोने में तीन दिनों पहले की खाल पड़ी थी। उसमें से अब महक आने लगी थी। दूसरी ओर के कोने में अनबिके पाये और छुरी-सत्तुर पड़े थे। दूसरे कमरे में करीम के जानवरों की महक, उनके खुरों के निशान और गन्दगी के सिवाय कुछ नहीं था। रस्सी पर तहमद लटक रही थी। उसका आधे से अधिक हिस्सा गन्दगी के साथ ख़ून के लाल-मटमैले धब्बों से भरा हुआ था।

बाहर दोपहर की धूप यूकिलप्टस के तनों और पीपल के नये सुर्ख़ और चिकने पत्तों पर फिसल रही थी। हवा में एक तैरती हुई संजीदगी के साथ बाज़ू वाले कमरे से ज़हीरा की बड़ी हल्की-हल्की गुनगुनाहट का स्वर फैल रहा था। ज़हीरा करीम से पर्दा नहीं करती। स्वभाव से ही वह कम बोलने वाली है। जब वह पहले-पहल उस मकान में आया तो उसके सामने वह न आती थी। रज़िया उसकी बड़ी प्यारी बच्ची थी। करीम को बच्चों से ज़्यादा लगाव नहीं था, फिर भी एक दिन वह रज़िया का 'मम्मा' बन गया और संकोच की जो दीवार थी, वह धीरे-

धीरे हट गयी।

प्रतिदिन की तरह ही ज़हीरा रज़िया को सुलाने का प्रयास कर रही थी। वह गीत, वे बोल, वह स्वर और उसकी मिठास सब-कुछ केवल रज़िया के लिए था। क्षण-भर के लिए करीम के मन में एक मोह उठा कि ज़हीरा रज़िया को अपने आँचल में समेटे कैसी लगती है, वह छिपकर देख ले, पर वहाँ से वह उठ नहीं पाया और ज़हीरा की आवाज़ धीमी होती-होती डूब गयी।

पलकें मूँदीं तो करीम को लगा, जैसे ज़हीरा का गीत उसके बन्द पपोटों को छेदता हुआ उसकी आँख में भर रहा है और हृदय में बहुत भीतर तक सहसा कोई चीज़ उतरती जा रही है....उतरती जा रही है। और कुछ यों जैसे कि पीपल के सैकड़ों सुर्ख़ नाज़ुक और नर्म-नर्म पत्तों के चिकने रुख़सारों पर उसने गाल धर दिये हों....

अनायास उसके भीतर से कोई चीज़ मथती हुई उमड़ी और पलकों को गीला करने लगी।

*

अँधेरा, यहाँ से वहाँ तक अँधेरा, करीम के कमरे से लेकर आँगन, पीपल के दरख़्त और आसमान के सितारों तक। दोपहर में करीम जिस जगह लेटा था, वहीं शाम हो गयी, अँधेरा हो गया। रात के ठण्डे दामन से लिपटी पास-पड़ोस की रसोई से उठ रही साग के छौंके जाने की सोंधी महक आ-आकर उसके नथुनों से टकराने लगी।

आँख खुलने के साथ ही रज़िया की नन्हीं हथेली करीम के माथे पर पड़ी। वह पास ही खड़ी सहमी हुई-सी देख रही थी। आँगन के कोने में ज़हीरा बैठी लालटेन जला रही थी। करीम घबराकर उठ बैठा और आश्चर्य से बोला, "तुम कब से आयी हो?"

काँच में कई दिनों का धुआँ अँटा था, बिलकुल मद्धिम-सी रोशनी लिये ज़हीरा करीम के पास आयी और लालटेन रख दी। रज़िया ने ज़हीरा के कुछ बोलने के पहले सारी शिकायतें कर डालीं—वह दिन-भर लेटा क्यों रहा? टाफ़ी क्यों नहीं लाया? शाम को घूमने क्यों नहीं गया? करीम ने एक प्रश्न-सूचक दृष्टि ज़हीरा के चेहरे पर डाली, वे सारे प्रश्न, जो रज़िया ने किये, क्या ज़हीरा के भी हैं? परिचय के बाद पहली बार इतने पास से और बिना पलक झुकाये एकटक वह ज़हीरा की ओर देखता रहा।

ज़हीरा ने धीमे स्वर में प्रश्न किया, "तुम्हारी तबीयत क्या ख़राब है?"

"नहीं तो. मैं ठीक हूँ।"

ज़हीरा कम बोलती थी। वह अनायास उठ खड़ी हुई तो करीम ने रोकते हुए कहा, "ज़हीरा, एक बात सुनो।"

ज़हीरा खड़ी हो गयी। पर कई क्षणों तक करीम कुछ नहीं बोला। जब रज़िया को लेकर ज़हीरा दरवाज़े तक चली गयी तो तेज़ी से उसके सामने जा, रज़िया को समेट लिया और उसकी आड़ में बड़ी कठिनाई से बोला, "मुझसे निकाह करोगी?"

मौन और निस्तब्धता का एक पल, दो पल और कई पल। करीम ने ज़हीरा की ओर नहीं देखा। रज़िया के नन्हें जिस्म में अपना चेहरा डाल, साँस रोके सिर से पाँव तक कान बना वह बड़ी देर तक धड़कता दिल लिये खड़ा रहा। और फिर अपनी डबडबा आयी आँखें उठाकर देखा तो ज़हीरा जा चुकी थी।

*

अगली सुबह करीम देर से सोकर उठा। उस दिन कुछ भी करने

को मन न हो रहा था, अतः दोपहर हो गयी और करीम कहीं गया नहीं। रज़िया आयी। उसमें न उल्लास था, न भोलापन, उम्र से बहुत ज़्यादा रूखेपन और संजीदगी के साथ बोली, "अम्मी कहती हैं कि तुम अच्छे आदमी नहीं हो, इसलिए मकान खाली कर दो।"

करीम की ज़बान से कुछ नहीं फूटा। यह कहकर बिना एक पल रुके लौट रही रज़िया के भूरे-भूरे रेशमी बालों, रंगीन रिबन और गुलाब के बूटों वाली फ्राक पर अपनी आँखें अटकाये वह खड़ा रह गया।

बाहर की धूप में चिलचिलाहट थी। पास के नीम की छाँव-तले पड़ोस के ढेर-से बच्चे खिलौनों में डूबे थे। कितनी उदास-उदास-सी दोपहर थी। शायद परिन्दों के डैने थक गये थे।

ज़हीरा अपने ताज़ा धुले, गीले और फैले बालों को कन्धों पर बिखेरे सामने की रस्सी पर गीले कपड़े सूखने के लिए डाल रही थी। ब्लाउज़ नहीं, सिर्फ़ साड़ी में थी। उसकी कन्धे तक खुली गोरी, चिकनी और मांसल बाहें धूप में चमकीं, चेहरे का गोरा रंग तमतमाया और गालों में कच्ची-प्याज़ की रंगत आ गयी। केवल निमिष-भर के लिए रज़िया पर अपनी नज़र डाल ज़हीरा ने कन्धों पर बिखरे गीले बालों को एक झटके के साथ सामने फेंका, स्वयं थोड़ा झुकी और गर्दन एक ओर टेढ़ी कर गीले बालों को हथेली से फटकारने लगी। चिकने, काले, लम्बे और पानी चू रहे बालों में तौलिये के लगातार टकराने की आवाज़—चटाख....चटाख....

करीम के बाहर-भीतर भी जैसे इसी तरह का कोई शब्द गूँज रहा था।

*

दियासलाई की तीली ने जितनी रोशनी उछाली, उस मुट्ठी-भर

प्रकाश में ज़हीरा का चेहरा केवल क्षण-भर के लिए चमका और बुझ गया। जली हुई सलाई फेंककर करीम बोला, इतनी रात गये क्या तुम मुझे निकालने आयी हो ?"

कमरे में अँधेरा था और बाहर पिछले दो घण्टों से लगातार हो रही बारिश का शोर फैला हुआ था। हवा में ठण्डक के साथ काँटे भी थे।

ज़हीरा ने करीम के प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। शायद वह वहीं खड़ी थी। बोली, "रोशनी करो।"

करीम ने कहा, "नहीं अँधेरा ही रहेगा, जलाने को तेल नहीं।"

अँधेरा, यहाँ से वहाँ तक अँधेरा !

करीम ने दियासलाई जलायी। ज़हीरा बोली, "तुम्हारा लाइसेन्स रद्द हो गया, क्या यह सच है ?"

"हाँ !"

"सुनती हूँ, रमज़ान बिना पास किया मांस बेचते पकड़ा गया और इल्ज़ाम तुमने अपने ऊपर ले लिया ?"

"हाँ, धन्धा है, बेईमानी क्या मैं नहीं कर सकता ?"

"तुम क्या मुझसे बहस करोगे ! रमज़ान को मैं जानती हूँ। बेईमानी किये बिना वह जी ही नहीं सकता। उसकी बीवी उससे भी अधिक लालची है। उसे सिर्फ़ सोना चाहिए। क्या यह बात तुमसे छिपी है ?"

कई मिनट बीत गये। बाहर बारिश की रिमझिम हो रही थी कमरे में और यहाँ से वहाँ तक अँधेरा। अपनी जगह से हटकर करीम उस जगह आया, जहाँ ज़हीरा खड़ी थी। दियासलाई जलायी और जब तक तीली जलती रही, उस रोशनी में उसके चेहरे को देखता रहा। लौ जब बुझी और तीली पर आग की नन्हीं लकीर-भर बाकी

रह गयी तो उसे फेंककर करीम बोला, "ज़हीरा, सौदा कौन नहीं करता ? उस दिन रज़िया को समेटकर जो सौदा मैंने तुमसे करना चाहा, वही सौदा आज केवल राह बदलकर तुम मुझसे करने आयी हो। तुममें, मुझमें और रमज़ान में क्या अंतर है ?"

केवल बरसात का संगीत, झक्कड़ और दरवाज़े के पल्लों के खुलने-मुँदने का स्वर और सन्नाटा। दियासलाई फिर जली और अधजली तीली एक ओर फेंककर उस तेज़ बारिश में ही करीम बाहर निकल गया।

* * *